(कवित्त)

आस ही अकास मधि अवधि गुनै बढ़ाय
    चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सो यहै।
निपट कठोर ये हो ऐंचत न आप ओर
    लाड़िले सुजान सों दुहेली दसा को कहै।
अचिरजमई मोहि भई घनआनँद यों
    हाथ साथ लाग्यो पै समीप न कहूँ लहै।
बिरह समीर की झकोरनि अधीर, नेह—
    नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड्यो रहै ॥ १६ ॥ —

प्रकरण—जी उड़ा उड़ा रहता है इसी को तुलनात्मक विधि से यहाँ दिखाया गया है। गुड्डी से जी के उड़ने में व्यतिरेक दिखाया गया है। गुड्डी आकाश में सामन्यतया उड़ानेवाले से बहुत दूर नहीं रहती, पर कभी-कभी वह डोर अधिक ढील देने से दूर भी हो जाती है। जी की विशेष स्थिति यह है कि वह बहुत दूर उड़ गया है। दूर चली जानेवाली गुड्डी डगमगाती बहुत है। ऐसी स्थिति में उसे सँभालकर उड़ानेवाला निकट कर लेता है, पर जी को खींचनेवाले का अभाव है। प्रिय के हाथ का परंपरया संबंध होते भी उसका नैकट्य नहीं प्राप्त होता। यदि गुड्डी दूर पहुँच गई हो और अंधड़ आ जाए तो डोर के टूट जाने और गुड्डी के फट जाने की आशका हो जाती है; डोर टूट जाती है, गुड्डी फट ही जाती है। पर जी ऐसी स्थिति में भी उड़ता ही रहता है, न डोर (अवधि टूटती है, न जी (हृदय) फटता है। गुड्डी खेल में उड़ाई जाती है जो भी खेल में उड़ाया गया है। उड़ानेवाले को गुड्डी की चिंता रहती है, पर जो उड़ानेवाले प्रिय निर्दिचत हैं। प्रिय की निर्दिचतता और प्रेमी के चित्त की विरहजन्य कष्ट सहने की दृढ़ता प्रदर्शित करना इसका प्रयोजन है।

चूर्णिका—आस = आशा। अवधि = समय की सीमा। गुन = डोर। चोपनि = चाव या उमंगों में आकर; उमंगों को। चढ़ाय = आकाश में बहुत दूर तक पहुँचा दिया; अधिक कर दिया। खेल यो = खिलवाड़। निपट = बहुत। कड़े = कड़े; निर्दय। ऐंचत न = खींचते नहीं। ओर० = अपनी ओर। लाडिले = प्रिय। दुहेली = दुख की। को = कौन। हाथ० = हाथ से (डोर के माध्यम से) लगी रहने पर भी दूर रहती है (गुड्डी आपके हाथ में पड़ा रहने पर भी आपसे दूर रहता है (जीव)। विरह० = विरहरूपी वायु के झोंकों से अधीर होकर नेह० = आँसू से भींगे रहने पर। तऊ = तो भी। गुड्डी = गुड्डी की भाँति।

विवरण—आशारूपी आकाश में अवधिरूपी गुण को बढ़ाकर तथा उमंग में आकर (उमंगों को चढ़ा (आकाश में दूर तक पहुँचा दिया—गुड्डी को; अधिक कर दिया उमंगों को) कर आपने यह खिलवाड़ किया। प्रिय की प्राप्ति में समय की सीमा बढ़ती जाती है, आशा इससे समाप्त नहीं होती बल्कि उमंगें अधिक होती जाती हैं) यह आपने खिलवाड़ कर रखा है (वस्तुतः

खेल मनोविनोद के लिए होता है। समय की सीमा बढ़ाना आदि भी अपने मनोरंजन के लिए ही आपने किया है)। आप बहुत कठोर (कड़े; निर्दय) हैं कि अपनी ओर खींचते ही नहीं (चढ़ी पतंग को उतारते नहीं; विरही को अपने पास बुलाते नहीं)। प्रिय सुजान से दुखद दशा कौन कहे (सुजान होने से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, दशा ऐसी है कि कोई कहे तो क्या कहे)। हे आनंद के घन, मुझे तो यह आश्चर्य लग रहा है कि हाथ के साथ लगे रहने पर भी सामीप्य की प्राप्ति कहीं नहीं हो रही है। पतंग हाथ के इशारे पर ही हिलती-डोलती है, पर हाथ के निकट वह आ नहीं पाती; विरही की सारी दुर्दशा प्रिय के ही हाथों हुई है, पर प्रिय का सामीप्य उस बेचारे को नहीं मिल रहा है। विरह की वायु के झकोरों से जी अधीर हो रहा है। फिर भी आँसू से भीगकर भी मेरा जी गुड्डी की भाँति उड़ता ही रहता है।

व्याख्या—आस = आशा कहने में स्वारस्य है। आशा का अर्थ दिशा होता है जो आकाश से उसे संबद्ध करता है। आकाश कहने में उसकी निस्सीमता की ओर संकेत है। आकाश शून्य है। आशा भी शून्य है। कोई परिणाम निकलनेवाला नहीं। चोपनि चढ़ाय दीनी = कहने का तात्पर्य यह कि आपने भी जानबूझकर ऐसा नहीं किया। उमंग में आकर अनजाने ही आप ऐसा कर बैठे। परिणाम की ओर ध्यान होता तो कदाचित् ऐसा न करते। कीनी खेल सो = खेल कर रहे थे। नहीं, खेल से ऐसा किया। खेल करनेवाला जानता है कि यह खेल है आपने खेल जानतेबूझते नहीं किया यह भी आपसे आप हो गया, आपकी जानकारी में नहीं हुआ। प्रिय में हृदय की सत्ता तो है, पर कष्ट उठाने का साहस नहीं है। दूसरे हृदय का कष्ट अनुभव करने की भी योग्यता उसमें नहीं है। फल यह है कि अपने कष्ट के निवारण और दूसरे के कष्ट से बचने की प्रवृत्ति है। ज्ञान अधिक है, हृदय की अनुभूति दबाए रहते हैं। इसीसे कठोर हैं। अत्यन्त कठोर, निपट कठोर हैं। उधर दशा अत्यन्त दुखद है। इतनी दुखद है कि उसको कहा नहीं जा सकता। जिस पर बीत रही है वह उसकी अतिशयता के कारण मौन है, चुप है। दूसरे पार्थक्य इतना अधिक हो गया है कि उतनी दूर से कुछ कहा भी जाय तो प्रिय तक उसके पहुँचने की संभावना नहीं। यदि कहा जाय कि कोई

संदेश देनेवाला हो तो कोई संदेश देनेवाला भी नहीं मिलता। ऐसी कष्ट-दायिनी स्थिति को सुनना और फिर उसका निवेदन करना कठिन है। यदि कदाचित् कोई कहे भी तो आप सुजान हैं। ज्ञान का पलड़ा आपमें भारी है। फिर हैं लाड़िले, केवल लाड़-प्यार में पले। इन बातों से आप कभी परिचित नहीं, इससे इनके प्रति अनुकूल वृत्ति किसी प्रकार आप में हो नहीं सकती। अचिरजमई = मुझे आश्चर्य ही आश्चर्य हो रहा है! अचरजमयी कहने का तात्पर्य यह है कि सारी घटना तिलतिल आश्चर्य से युक्त है। मुझे दो स्थितियों में रहना पड़ता है। एक तो दुख का कष्ट झेलना दूसरे आश्चर्य करना यह आश्चर्य सुखद नहीं है। आश्चर्य भी दुखद है। जो आश्चर्य सुख में होता है वह सुखद होता है। जो दुख में दुख के बढ़ाने में सहायक होता है वह दुखद होता है। आश्चर्य यहाँ संचारी है। वह भी दुःख बढ़ाता है। आप हैं आनंद के घन और मैं हूँ दुहेली दशा के बीच आश्चर्य में पड़ी। हाथ साथ लाग्यौ = साथ लगा है, क्षण भर के लिए पृथक् नहीं होता। जो जो कष्ट होता है, जैसे-जैसे होता है आपके ही हाथों होता है, दूसरा कोई हेतु उसमें नहीं है। समीप न कहूँ लहै = समीप तो कहीं मिलता नहीं। वियोग के कारण देशान्तर होने से दूरी। निकट आने पर अश्रु आदि के आ पड़ने से बाधा होकर दूरी। यह आश्चर्य प्रिय को और उसकी विशेषता के कारण है, विषयगत है। उनके हाथों में ही जादू है। साथ लगे रहने पर भी सामीप्य की अप्राप्ति। पर विषयिगत विशेषता भी है। विरह की हवा लगने से हृदय को उड़कर कहीं का कहीं चला जाना चाहिए। गुड्डी तो हवा लगने पर समीर के झकोर से ठहर नहीं सकती। पर जीव टिका है, झकोर सहता है, फिर भी उड़ ही रहा है। आशा के आकाश में टिका है, टँगा है। आँधी आने पर ही गुड्डी की दुर्गति हो जा सकती है. कहीं पानी भी बरसने लगे तो गुड्डी और शीघ्र गलकर फट जाए। यहाँ उड़ने की बात और आँसू के गिरने से भी जीव सब कुछ सहता डटा है। समीर विरह के कारण है। नीर स्नेह के कारण है। आँसू प्रेम के कारण ही आ रहे हैं, वेदना के कष्ट के कारण नहीं। वेदना का कष्ट तो अंधड़ की भाँति है। प्रेम के पानी से उसकी धूल कुछ कम ही होती है।

अलंकार—रूपक—आशा-आकाश, अवधि-गुण, विरह-समोर आदि में। उपमा—खेल सो, गुड़ी लौं। विरोधाभास—हाथ साथ लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै। विभावना तीसरी—नेह-नीर भीज्यौ तऊ उड़्यौ रहै। विशेषोक्ति भी—जल से गलने-फटने की स्थिति न आने से। व्यतिरेक—जीव गुड़ी से बढ़कर है। श्लेष—गुण में। अनुप्रासादि।

भाषा—'जी उड़ना' मुहावरे के आधार पर गुड्डी से जी का रूपक। मुहावरे अनेक पड़े हैं—गुण (डोर) बढ़ाना, खेल करना, हाथ लगा होना, समीप (पास) न लहना (पाना)।

पाठां०—आस ही-आसहि (सुजानहित)।